मनरेगा की मज़दूरी को कौन तय करता है ? शिकायत करने (वॉइस) और कहीं और काम करने (ऐक्ज़िट) से संबंधित ओड़िसा के कुछ साक्ष्य

What Determines MGNREGA Wages? Some Evidence on Voice and Exit from Orissa

संदीप सुखतंकर
Sandip Sukhtankar
April 9, 2012

भारत में काम के अधिकार के ऐतिहासिक कार्यक्रम अर्थात् महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) के कार्यान्वयन की यह छठी वर्षगाँठ है. इस अधिनियम में भारत के प्रत्येक ग्रामीण परिवार (अर्थात् 850 मिलियन लोगों) को सौ दिन के सवेतन रोज़गार की गारंटी दी गई है. इसमें पात्रता का कोई निर्धारित मापदंड नहीं है. इस सरकारी कल्याण योजना के अंतर्गत वर्ष 2010-11 में 401 बिलियन रुपए (या $8.9 बिलियन अमरीकी डॉलर) की आबंटित लागत की व्यवस्था की गई है, जो सरकारी खर्च का 3.6 प्रतिशत है. इस कार्यक्रम के कई आलोचक और समर्थक भी हैं. इसके समर्थक यह मानते हैं कि इससे ग्रामीण इलाकों का कायाकल्प हो जाएगा और आलोचक यह समझते हैं कि इससे बड़े पैमाने पर घूसखोरी की बीमारी फैलेगी.

परंतु इस वादविवाद के बावजूद कई कारणों से इसके कार्यक्रमों का सख्ती से समग्र मूल्यांकन करना कठिन है. सच तो यह है कि यह कार्यक्रम भारत के सभी ग्रामीण क्षेत्रों में लागू है और इतने थोड़े समय में इतने बड़े क्षेत्र में इसे लागू किया गया है कि इसके परिणामों की तुलना के लिए कोई भी मानदंड नहीं है. यदि अलग-अलग समय में शुरू किए गए कार्यक्रमों को आधार बनाकर भी आरंभिक कार्यक्रमों के क्षेत्रों की तुलना बाद में शुरू किए गए कार्यक्रमों के क्षेत्रों से की जाए तो भी संभावना इस बात की है कि आरंभिक कार्यक्रम के मानदंड बाद के क्षेत्रों पर भी लागू हो जाएँगे और इससे तुलना निष्पक्ष नहीं रह पाएगी. अंततः जब चयन या इस कार्यक्रम के लिए चुने गए लाभकर्ताओं का कोई मानदंड ही नहीं है तो कार्यक्रम के लाभकर्ताओं और अलाभकर्ताओं की तुलना चयन के आधार को निष्पक्ष नहीं रहने देगी. वैज्ञानिक मूल्यांकन कार्यक्रम की शुरूआत के पहले ही संभव हो सकता था, लेकिन भारत में विधि निर्माण की प्रक्रिया ही कुछ ऐसी है जिसमें ऐसा वैचारिक विश्लेषण संभव ही नहीं है.

क्या इसका मतलब यह है कि हम ऐसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम के विश्लेषण का ख्याल ही छोड़ दें. नहीं, बिल्कुल नहीं. यदि सीमित दृष्टिकोण को सामने रखकर कुछ खास राज्यों में कार्यक्रम के मानदंड में परिवर्तन कर दिए जाएँ तो शायद यह और भी उपयोगी हो सकता है. ऐसे बहुत से विश्लेषण हुए हैं. इनमें से कुछ मनरेगा की वेबसाइट पर हमारी सहायता के लिए रख दिए गए हैं. अपने सह-लेखक पॉल निएहॉस के साथ मिलकर मैंने नीतिगत परिवर्तन के प्रभावों का एक ऐसा विश्लेषण किया हैः ओड़िसा में सांविधिक दैनिक मज़दूरी 55 रुपए से बढ़ाकर 70 रुपए कर दी गई है और यह बढ़ोतरी 1 मई, 2007 से लागू हो गई है. निश्चय ही मनरेगा का मुख्य नीतिगत मानदंड मज़दूरी ही है और इसकी प्राप्ति राजकोषीय दृष्टि से और बाज़ार की गड़बड़ी को रोकने के लिए महत्वपूर्ण है. जब नीति-निर्माता मज़दूरी बढ़ाते हैं तो वे यह भी जानते हैं कि इस मज़दूरी की पूरी रकम कामगारों तक नहीं पहुँचेगी और उसमें से कुछ रकम स्थानीय अधिकारी हड़प लेंगे.कितनी बढ़ोतरी उन

तक पहुँचेगी और कितनी रकम बीच में ही गायब हो जाएगी, ये कुछ ऐसे सवाल हैं जिनका जवाब नीतिनिर्माताओं को सच्चे तौर पर ढूँढना ही होगा.

ओड़िसा के कोरापुट, रायगढ़ और गजपति ज़िलों के साक्ष्य कुछ हद तक निराशाजनक हैं. लगभग तीन हज़ार परिवारों के बड़े पैमाने पर किए गए सर्वेक्षण से प्राप्त हमारे मूल आंकड़ों से उजागर होता है कि बढ़ोतरी की कोई भी रकम उन तक *नहीं* पहुँची है. जहाँ एक ओर आधिकारिक आँकड़े दर्शाते हैं कि अदा की गई मज़दूरी की रकम में औसतन 55 रुपए से लगभग 70 रुपए तक की वृद्धि हुई है, वहीं परिवारों से लिए गए इंटरव्यू से इसकी पुष्टि नहीं हुई है. यद्यपि मज़दूरी में किए गए परिवर्तन से पहले प्रतिदिन परिवारों को 55 रुपए की सांविधिक मज़दूरी मिलती थी, लेकिन परिवर्तन के बाद वास्तविक मज़दूरी में कोई बढ़ोतरी नहीं हुई. हमारे आंकड़ों से यह सरलीकरण भी खारिज हो जाता है कि मज़दूरी उन तक नहीं पहुँची. उदाहरण के लिए यह बात भी नहीं है कि ये परिवार नहीं जानते थे कि मज़दूरी में 72 प्रतिशत की वृद्धि हुई है और न ही इन धूमिल आंकड़ों से कोई परिणाम भी सामने नहीं आया है.बस यह एक अल्पकालिक संतुलन है.

इन परिणामों की व्याख्या करते हुए निश्चय ही कुछ ऐसी चेतावनियाँ हैं जिन्हें हमें ध्यान में रखना होगा. हमने जिन इलाकों का अध्ययन किया है वे दूरवर्ती हैं और भ्रष्टाचार के लिए कुछ हद तक कुख्यात भी हैं और 2007 के मध्य के हमारे आँकड़े कार्यक्रम की आरंभिक अवस्था के हैं. फिर भी परिवारों तक पूरी रकम न पहुँचने के कारणों की गहन छानबीन से जो पाठ हमने सीखा है उसका उपयोग कहीं और भी किया जा सकता है.
हिर्शमैन के निर्णायक काम को आगे बढ़ाते हुए हमने अधिकारियों की अधूरी निगरानी के बीच मनरेगा की मज़दूरी के दो सक्षम संचालकों (इसके खिलाफ़ आवाज़ उठाने अर्थात् *''वॉइस''* और कहीं और काम करने अर्थात् *''ऐग्ज़िट''*) की छानबीन की. हमारे संदर्भ में परिवारों से दो अनुक्रियाएँ अपेक्षित थीं. यदि उन्हें सरकार द्वारा निर्धारित सांविधिक मज़दूरी की दर नहीं मिली है तो वे इसकी शिकायत कर सकते हैं या इसका विरोध कर सकते हैं अर्थात् *''वॉइस''* और वे इस कार्यक्रम के अंतर्गत दिए गए काम को करने से इंकार कर सकते हैं और कहीं और रोज़गार ढूँढ सकते हैं अर्थात् *''ऐग्ज़िट''*.

जहाँ तक कामगारों को गारंटीशुदा मज़दूरी देने का संबंध है, इसके खिलाफ़ शिकायत या विरोध करने अर्थात् *''वॉइस''* को लेकर हमारे परिणामों में परस्पर तालमेल नहीं है. यदि अधिकारी सचमुच कामगारों को निर्धारित दर पर उनकी मज़दूरी दे रहे थे तो सांविधिक मज़दूरी में हुई वृद्धि का भुगतान न होने पर की गई शिकायत और भी जायज़ होगी और हम यह उम्मीद करेंगे कि यह बढ़ी हुई मज़दूरी कामगारों तक पहुँच जाए. यह बात सुनकर कि शिकायत करने से कुछ नहीं होगा इस इलाके में किसी को आश्चर्य नहीं होगा जबकि मनरेगा में शिकायत दाखिल करने का एक औपचारिक तंत्र है. हो सकता है कि खास तौर पर हमने जिन गरीब आदिवासी इलाकों का अध्ययन किया है, वहाँ इसे अमल में न लाया जा रहा हो.जहाँ 36 प्रतिशत शिकायतकर्ताओं ने काम करते हुए अपनी समस्याओं के बारे में हमें बताया था, वहीं केवल 7 प्रतिशत मज़दूर ऐसे थे जिन्होंने कहा था कि वे उच्च अधिकारियों से शिकायत करके अपनी समस्या को सुलझा लेंगे. शिकायत न करने के बारे में पचपन प्रतिशत मज़दूरों का कहना था कि शिकायत करने का खर्च बहुत ज़्यादा है, क्योंकि शिकायत करने के लिए उन्हें ब्लॉक या ज़िला कार्यालय में जाना पड़ेगा और परिवहन की सीमित सुविधाओं के कारण यह संभव नहीं हो पाता. सैंतीस प्रतिशत का कहना था कि उन्हें शिकायत सुने जाने की कोई उम्मीद नहीं है और

इससे अधिकारी शिकायतकर्ता मज़दूरों से नाराज़ भी हो सकते हैं. इन परिस्थितियों में अधिकारी उनकी दंड-माफ़ी के नाम पर उनकी मज़दूरी में कुछ कटौती भी कर सकते हैं.

आखिर क्या कारण है कि अधिकारी बढ़ोतरी से पहले 55 रुपए की सांविधिक मज़दूरी के आसपास की रकम का भुगतान उन्हें करते रहे हैं? इसका कारण यह है कि कामगारों के पास इस काम को छोड़कर दूसरी जगह काम करने विकल्प रहता है और यही सौदेबाज़ी की उनकी एक ताकत रही है और वे मनरेगा में काम करने के लिए बाध्य नहीं होते. अधिकारी चाहते हैं कि कम से कम कुछ कामगार तो इस योजना में काम करते रहें, ताकि वे अधिक काम दिखाकर अधिक किराया वसूल कर सकें (अर्थात् यदि कोई कामगार एक दिन काम करता है तो वे उसे दो दिन दिखा देते हैं और बाकी रकम हड़प लेते हैं. यदि कोई एक दिन के लिए भी काम पर नहीं आता है तो वे काम की कोई रिपोर्ट बना ही नहीं सकते). ऐसी स्थिति में अधिकारी कामगारों को काम करने के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से बस उतना ही देते हैं जितना बाहर काम करने पर मिलता है. हमने गाँव की ज़मीन के दान और मज़दूरों का उपयोग करते हुए *ऐग्ज़िट* अर्थात् बाहर जाकर काम करने की परिकल्पना का परीक्षण किया. बाहर जाकर काम करने के विकल्प उन स्थानों में अपेक्षाकृत कम होंगे जहाँ ज़मीन पर काम करने वाले मज़दूर अधिक होंगे, जबकि निर्धारित मज़दूरी होने के कारण मनरेगा को अधिक मज़दूरों / माँग के लिए आगे नहीं आना चाहिए. वस्तुतः हमें लगता है कि कामगारों द्वारा प्राप्त कार्यक्रमों की मज़दूरी उन इलाकों में अधिक होती है जहाँ मज़दूरों की कमी होती है. इससे बाहर जाकर काम करने की क्षमता के कारण उनकी सौदेबाज़ी की क्षमता भी बढ़ जाती है और इसीसे कार्यक्रम की मज़दूरी तय की जा सकती है. इसके अलावा स्थानीय मज़दूरी को तय करने की मनरेगा की क्षमता पर चलने वाले विवाद के बावजूद हमें लगता है कि मनरेगा स्थानीय मज़दूरी को तय नहीं करता, बल्कि वह मात्र उसे स्थानीय आवश्यकता के अनुरूप ढालता है.

इसका उज्ज्वल पक्ष यह है कि जहाँ कहीं एनजीओ सक्रिय हैं वहाँ पर मज़दूरों को बढ़ी हुई दर पर अधिक मज़दूरी मिलती है. निश्चय ही यह मात्र संयोग हो सकता है; कदाचित् यह तथ्य अनदेखा रह गया है कि एनजीओ वहीं काम करते हैं जहाँ मज़दूरों की आवाजाही काफ़ी रहती है मात्र एनजीओ होने से ऐसा कुछ नहीं होता. लेकिन शायद एनजीओ कामगारों की शिकायतों को और अधिक प्रभावी बना देते हैं, जिससे कामगारों के विरोध का स्वर अधिक मुखर हो जाता है और इसके परिणामस्वरूप उन्हें उचित मज़दूरी मिल सकती है.

अंत में उपसंहार के रूप में यही टिप्पणी करना चाहूँगा कि बड़े नीतिगत परिवर्तन लागू करने से पहले हमें बहुत सावधानी से इसका मूल्यांकन करना होगा और इसके महत्व को समझना होगा. अक्सर प्रौद्योगिकीय समाधान के रास्ते सुझाए जाते हैं. जैसे बायोमैट्रिक दृष्टि से जाँचे-परखे गए *आधार* जैसे आईडी कार्ड, जिनकी सहायता से ऐसी रकम को इलैक्ट्रॉनिक रूप में अंतरित किया जा सकता है. इससे मनरेगा के अंतर्गत देय मज़दूरी का भुगतान स्मार्टकार्ड की सहायता से किया जा सकता है. कार्तिक मुरलीधरन, पॉल निएहॉस और स्वयं मैं भी राज्य सरकार के पूरे सहयोग से आंध्र प्रदेश में मनरेगा के अंतर्गत देय मज़दूरी का भुगतान स्मार्टकार्ड से करने की प्रभावशालिता को जाँचने के लिए यादृच्छिक रूप में परीक्षण कर रहे हैं. इस प्रकार के परीक्षणों के परिणामों से हमें यह समझने में मदद मिलेगी कि इस कार्यक्रम के अंतर्गत अंततः मज़दूरों को देय मज़दूरी मिल सकती है या नहीं.

संदीप सुखतंकर डार्टमाउथ कॉलेज के अर्थशास्त्र विभाग में सहायक प्रोफ़ेसर हैं.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार <malhotravk@hotmail.com>